तिन कर पीड़ित देव मनुष्य तिर्यंच नर्क गतियों के प्राणी तिनके दुःखों को नाश करनेवाले हैं। और कैसा है ग्रंथ कि भव्य जीवोंको ज्ञानका देनेवाला है और सज्जन पुरुषोंके चित्तको प्यारा आनंद देनेवाला ऐसा सार्थक सज्जनचित्त वल्लभ है तिसको संक्षेप रूप है सत्पुरुषो तुम सुनो—

रात्रिश्चन्द्रमसा विनाब्जनिवहैर्नो भातिपद्माकरो, यद्वत्पण्डितलोकवर्जितसभादन्तीवदन्तंविना। पुष्पंगन्धविवर्जितंमृतपतिः स्त्रीचेहतद्वन्मुनिश्चारित्रेण विनानभातिसततंयद्याप्यसौशास्त्रवान ॥२॥

(हेमुनि) चारित्र रहित मुनि शोभा नहीं पाता। जैसे चंद्रमाके बिना अंधियारी रात्रि शोभा नहीं पाती तैसेही कमलों के बिना सरोवर शोभा को नहीं पाता। तथा पण्डित लोगोंके विना सभा शोभाको नहीं पाती, दांतोंके बिना हाथी शोभाको नहीं पाता। अथवा सुगंधके बिना पुष्प शोभाको नहीं पाते। वा पतिके मरनेपर विधवा स्त्री शोभा को नहीं पाती। ऐसेही चारित्र (शुद्धाचरण) बिना मुनि शोभाको नहीं पाता चाहे

कैसाही शास्त्रों का ज्ञाता (जाननेवाला) क्यों न होवे। कारण कि क्रिया विना ज्ञानकेवल बोझा है।

किंवस्त्रं त्यजनेनभोमुनिरसावेतावताजायतेक्ष्वेडेनच्युतपन्नगो-गतविषःकिंजातवानभूतले। मूलंकिंतपसःक्षमेंद्रियजयःसत्यंसदाचारता रागादींश्चविभर्तिचेन्नसयति लिंगीभवेत्केवलम्॥ २॥

हे मुनि! क्या इन वस्त्रोंके त्यागनेसे मुनि हो जाता है (अर्थात् नग्न होनेसे ही महाव्रती न बनो) क्या कांचली के छोड़ने से पृथ्वीपर सर्प निर्विष होजाता है? (कदापि नहीं होता है) तपका मूल क्या है? (अर्थात् तप कैसे निश्चल रह सकता है?) ऐसा प्रश्न होते उत्तर करते हैं कि तपके मूल ये हैं। उत्तम क्षमा, स्पर्शन, रसन घ्राण चक्षु श्रवण ये पॉच विषयाभिलाषिणी इन्द्रियां हैं इनको जीतना। सत्यवचन बोलना श्रेष्ठ शुद्ध आचरण पालना अर्थात् दोष न लगाना। और जो हृदय में रागादिकोंको ही बढ़ाया अर्थात् धन धान्य सवारी चेले महल वस्त्र भूषणादि परिग्रहोंकी अंतरंग में चाह करी

तो यह मुनि मुद्रा तो केवल भेष मात्र ही हुई (इससे मुनिको अन्तरंग परिग्रह प्रथम छोड़ना योग्य है)॥

देहेनिर्ममतागुरौविनयतानित्यंश्रुताभ्यासताचारित्रोज्वलतामहोपशमतासंसारनिर्वेगता। अन्तरवाह्यपरिग्रहत्यजनता धर्मज्ञता साधुता साधोसाधुजनस्यलक्षणमिदंसन्सारविक्षेपणम्॥ ४॥

हे साधु! साधु जनोंके ये लक्षण संसार (भवभ्रमण) के नाश करने वाले हैं। सो कौन? तिनको कहते हैं-शरीरसे ममत्व न करना। गुरुजन जो गुणवृद्ध वयवृद्ध पुरुष हैं तिनका विनय (आदरमान) करना। और प्रतिदिन धर्मशास्त्रों का अभ्यास करना। और चारित्र (जपतप व्रत क्रिया) को उज्वलता अर्थात् शुद्धता से निर्दोष पालना(आचरण करना) और क्रोध मान माया लोभ मोह और काम इनको उपशम (शांति) करना। और संसार (भव भ्रमण) से डरना और मिथ्यात्व १ क्रोध २ मान ३ माया ४ लोभ ५ हास्य ६ रति ७ अरति ८ शोक ९ भय १० ग्लानि ११

स्त्रीवेद १२ पुरुषवेद १३ नपुंसकवेद १४ यह १४ प्रकार अंतरंग परिग्रह और क्षेत्र १ वस्तु २ हिरण्य ३ सुवर्ण ४ धन ५ धान्य ६ दासी ७ दास ८ कूप्य ९ भांड १० ये दश वाह्य परिग्रहका त्याग करना। और उत्तम क्षमा १ मार्दव २ आर्यव ३ सत्य ४ शौच्य ५ संयम ६ तप ७ त्याग ८ आकिंचन ९ ब्रह्मचर्य १० ये दशप्रकार धर्मका जानना पालना ये साधुओंके लक्षण हैं ॥४॥

किन्दीक्षाग्रहणेन तेयदिधनाकांक्षाभवेच्चेतसि किङ्गार्हस्थमनेन वेशधरणेनासुन्दरम्मन्यसे। द्रव्योपार्जनचित्तमेवकथयत्यभ्यन्तरस्याङ्गनानोचैदर्थं परिग्रह ग्रहमतिर्भिक्षोनसम्पद्यते ॥ ५ ॥

हे भिक्षुक! (मुनि) जो तेरे चित्तमें धनकी (द्रव्य की) वांक्षा है अर्थात् तू धनको चाहता है, तो दिक्षा ग्रहनेसे क्या? अर्थात् क्या? कार्यसरा और काहेको धारण की। क्या गृहस्थका वेश (जो वस्त्राभूषण सहित है) मुनिके नग्न वेशसे बुरा जान पड़ता है। अब तू जो द्रव्य के उपार्जन को मनसे चेष्टा करता है उससे तो तु-

झे स्त्रीकी चाह जानी जाती है । क्योंकि स्त्रीकी चाह न होती तो धन लेनेकी बुद्धिकैसे उत्पन्न होती ? काहे से कि उदर पूर्णाको भोजन तो भाग्यानुकूल गृहस्थोंके घरमें मिल ही जाता है फिर धन क्यों चाहता है । हे मुनि ऐसे आचरणसे तो मुनिपद को बहुत कलंक लगता है ॥५॥

योषापाण्डुकगोविवर्जितपदेसंतिष्ठभिक्षोसदा भुक्त्वाहारमकारितंपरगृहेलब्धंयथासम्भवम् । षड्धावश्यकसत्क्रियासुनिरतो धर्म्मानुरागंवहन् सार्द्धंयोगिभिरात्मभावनपरोरत्नत्रयालंकृतः ॥६॥

हे मुनि तू नारी नपुंसक और पशुओंसे रहितस्थानमें सदा काल रह । कहा करके पराये गृह अर्थात् गृहस्थोंके घरमें जो उन्होंने तेरे लिये नहीं बनाया अर्थात् अपने लिये बनाया है सो रूखा सूखा (चिकनाईरहित वा दाल तरकारी रहित) जो तुझे तेरे भोगांतरायके क्षयोपशम अनुसार मिलजावे ऐसा भोजन करके और त्रिकाल सामायक १ पंचपरमेष्ठीकास्तवन २ तथापंचपरमेष्ठीकी बंदना ३ प्रतिक्रमण ४

प्रत्याख्यान ५ कायोत्सर्ग ६ ये छः आवश्यकरूप सत्क्रियाओंको करता और दशलक्षण धर्ममें प्रेम धरके आत्मभावमें लगताहुआ सम्यक् रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र) के धारक ऐसे मुनिजनोंके साथ में बास कर ॥६॥

दुर्गन्धंवदनंवपुर्मलभृतम्भिक्षाटनाद्भोजनं शय्यास्थण्डिलभूमिषु-प्रतिदिनंकट्यांनतेकर्पटम् । मुण्डंमुण्डितमर्द्धदग्धशववत्त्वंद्दश्य तेभोजनैःसाधोद्याप्यबलाजनस्यभवतोगोष्ठीकथंरोचते ॥ ७ ॥

हे साधु ! तेरे मुखमें दुर्गंध आती है कारण कि तूने दंतधोवन (दांतोन) का त्याग किया है । और शरीर रजसे मैला हो रहा है ; क्योंकि स्नान करनेका भी त्याग किया है । और पराये गृहमें भिक्षा भोजन करता है ; कारण कि आरंभ परिग्रहका त्यागी है । और कठोर कंकरीली भूमिपर नित्य सोता है क्योंकि पलंग विस्तरका त्यागी है और कटि में कोपीन तक नहीं है कारण कि सर्व प्रकारके वस्त्रोंका त्याग किया है । इससे लोगों की दृष्टि में अधजले मुर्देकी तुल्य भयं-

कररूप दृष्टि पड़ता है सो अब भी तू स्त्रीजनों के साथ बचनालाप करनेके लिये मनको लुभाता है। सो क्यों मन भ्रमाता है। देख! जो पुरुष पानादि सुगंधित पदार्थखाते नित्य स्नान विलेपन करते और नानाप्रकार के सरस भोजन कर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत रहते हैं, स्त्रियोंके चित्त को तो सो पुरुष प्यारे होते हैं तू क्यों मन चला कर ब्रह्मचर्य रत्न को नाश करता है॥ ७॥

अङ्गंशोणितशुक्र सम्भवमिदम्मेदोऽस्थिमज्जाकुलम् वाह्ये माक्षिक पत्रसन्निभमहोचर्मावृतंसर्वतः। नोचेत्काकबकादि भिर्वपुरहो जाये तभक्ष्यंध्रुवं दृष्ट्वाद्यापिशरीरसद्मनिकथंनिर्वेगतानास्ति ते॥८॥

इस शरीर रूपघरसे तू उदास नहीं होता सो बड़ा आश्चर्य है। कैसा है यह शरीर माता के रुधिर और पिताके वीर्यसे तो उत्पन्न भया है और मेद हाड़ मज्जाके समूहसे भरा महा अपवित्र है, फिर कैसा है यह शरीर बाहरसे मक्खीके पंखके समान पतली खालसे मढ़ा है यदि सर्व ओरसे मढ़ा न होता तो रक्त मांसको

देख कर हिंसक मांस भक्षी पक्षी काग बगुला आदि इसे नोच २ कर खाजाते सो ऐसा अपवित्र और घिनावना शरीर रूप घर तिसे देखकर तुझे इससे चित्तमें विरक्तता नहीं होती सो बड़ा आश्चर्य है ॥ ८ ॥

दुर्गन्धंनवभिर्वपुः प्रवहतिद्वारैरिदंसंततं तद्दृष्ट्वापिचयस्यचेतसिपुनर्निर्वेगतानास्तिचित्। तस्यान्यद्भुवि वस्तुकीदृशमहो तत्कारणं कथ्यताम्, श्रीखंडादिभिरङ्गसंस्कृतिरियंव्याख्यातिदुर्गन्धताम्॥९॥

यह शरीर महा दुर्गंधित है। फिर कैसा है यह शरीर नवद्वारोंसे (दो नाकके द्वारोंसे रहंट दो आखोंके द्वारोंसे कीचड़ दो कानोंके द्वारोंसे ठेंठ और एक मुहसे खखार और एक लिंगद्वार से मूत्रवीर्य और एक गुदा द्वारसे मल) सदा अपवित्र दुर्गंधित झरे है तिसको देखकर भी जिसके चित्तमें यदि ऐसे शरीरसे विरागता (उदासीनता) नहीं है तो कहिये भूमण्डलपर और कौनसी वस्तु ऐसी होगी कि जो तिसको विरागताका कारण होगी। क्योंकि यदि केसर

चंदनादिका संस्कार शरीरको दुर्गंधताको प्रगट करता है। भावार्थ केसर चंदन आदि सुगन्धित पदार्थ शरीरसे लगते ही दुर्गंधित होजाते हैं इससे शरीर प्रगट पने मलिन दुर्गंधित और अपवित्र समझो॥ ९॥

स्त्रीणांभावविलासविभ्रमगतिंदृष्ट्वानुरागंमनागमागास्त्वंविषवृक्ष पक्वफलवत्सुस्वादवन्त्यस्तदा। ईषत्से वनमात्रतोपिमरणं पुंसांप्र- यच्छन्तिभोः तस्माद्दृष्टिविषाहिवत्परिहरत्वं दूरतो मृत्यवे॥ १०॥

हे मुनि! स्त्रियोंकी भावविलास विभ्रम गतिको (नाना प्रकारके बहानोंसे अंग दिखाना मटकाना मुसक्याना सेनचलाना, गाना प्रेम दिखाना, अनेक भांति चेष्टा करना इत्यादि चालको) देखकर तू तनक भी अपने मनमें अनुराग (प्रेम) मतकर। कैसी हैं ये स्त्रियां विषवृक्षके पक्के फलवत सुन्दर स्वादवाली हैं। और किंचिन्मात्र सेवनसे मृत्युको देती हैं। जैसे विषवृक्षका पका हुआ विकारी फलखानेमें तो सुखस्वाद है परंतु थोड़ासा भी खानेसे अल्पकालमें बिकार

(रोग) बढ़ाकर प्राण लेता है। तैसे ही ये स्त्रियां भोगके समय तो सुन्दर प्रिय लगती हैं परंतु अन्तमें निर्बलता उपदंश मूत्रकृच्छ, प्रमेह आदि रोगकर मरणको प्राप्ति करती हैं। और परभवमें दुर्गतिको पहुंचाती हैं। इसलिये दृष्टि विषजाति के सर्प समान इनको भयंकर जान तू दूर ही से छोड़दे॥ १० ॥

यद्यद्वाञ्छतितत्तदेववपुषेदत्तं सुपुष्टं त्वया सार्द्धं नैतितथापिते
जड़मते मित्रादयोयान्तिकिम्। पुण्यंपापमितिद्वयञ्च भवत: पृष्टे
नुयातीहते तस्मान्मास्म कृथामनागपिभवान्मोहंशरीरादिषु ॥११॥

हे जड़मति! हे अज्ञान जो जो वस्तु यह शरीर चाहता है सो सो सर्व पुष्टकारी सुस्वादु वस्तु तूने इसे दीं अर्थात् अनेक प्रकारकी पुष्टकारी सुस्वादु वस्तुओंसे तूने इसे पोषा, तो भी यह कृतघ्न मित्रवत शरीर तेरे साथ नहीं जायगा। तो ये जिनको तू इष्ट मित्र मान रहा है॥ और तुझसे प्रत्यक्ष भिन्न हैं सो कैसे तेरे साथ जावेंगे तेरेसाथ तो तेरे किए हुए पुण्य या पाप दोही

पीछे २ चलेंगे अर्थात् जहां तू जन्म लेगा तहां ही ये अपना अपना २ फल देने लगेंगे। इससे तू अब रंचमात्र भी शरीरसे वा मित्र बांधवों से (संसारमें फंसानेवाला) रागभाव मतकर यही तुझको परमोपकारी शिक्षा है॥ ११॥

शोचन्तेनमृतं कदापिबनितायद्यस्तिगेहेधनं तच्चेनास्तिरुदन्ति जीवनधियास्मृत्वापुन:प्रत्यहं। कृत्वातद्दहनक्रियां निजनिजव्यापार चिंताकुलातन्नामापिच विस्मरन्तिकतिभिः सम्वत्सरै: योषिता:।१२।

यदि घर में लक्ष्मी होवे तो स्त्री भी पतिके मरने पर शोक संताप नहीं करती है। और जो घरमें धन नहीं होवे तो अपने जीतव्य की इच्छा धारण करके प्रतिदिन मेरे पतिको स्मरण कर कर अवश्य रोती है और उसकी दग्ध क्रिया करके सम्बन्धीजन सब अपने अपने २ व्यापारिक कार्यों में चिन्तातुर हो जाते हैं। और कुछ वर्ष व्यतीत होनेपर पत्नी उसका नाम भी भूल जाती है अर्थात् कभी स्मर्ण नहीं करती है। सारांश संसारमें कोई किसीका सम्बन्धी नहीं

है। सब लोग अपने अपने स्वार्थके सगे हैं। जहां स्वार्थ साधन नहीं देखते चट अलग हो जाते हैं फिर ऐसे अपस्वार्थी लोगोंके मिथ्या प्रेममें फंसकर जीवको अपनाअनहित करना उचित नहीं है॥ १२॥

अष्टाविंशतिभेदमात्मनिपुरासंरोप्यसाधोव्रतं साक्षीकृत्यजिनान्गुरूनपिकियत्कालंत्वया पालितं। भक्तुंवाञ्छसिशीतवातविहतो भूत्वाधुनातद्व्रतंदारिद्रोपहतःस्ववान्तभशनभुंक्ते क्षुधार्तोपिकिम् १३

हे साधु! तूने प्रथम केवली भगवान और जैन-गुरूनके साथ अष्टाईस मूलगुण (अहिंसा १ सत्य २ अचौर्य ३ ब्रह्मचर्य ४ परिग्रहत्याग ५ ये पंचमहाव्रत इर्यासमिति १ भाषासमिति २ ईषणा समिति ३ आदाननिक्षेपणा समिति ४ प्रतिस्थापना समिति ५ ये ५ समिति हैं। स्पर्शन १ रसना २ घ्राण ३ चक्षु ४ श्रोत्र ५ इन पांच इंद्रियोंका दमन। सामायक १ तीर्थंकरोंका स्तवन २ वंदना ३ प्रतिक्रमण ४ प्रत्याख्यान ५ कायोत्सर्ग ६ ये छः आवश्यक और भूमिशयन

१ स्नानत्याग २ दंतधोवनत्याग ३ वस्त्रत्याग ४ केशलुंच ५ उदंडआहार ६ एकबारलघु भोजन ७) ये धारण किये और कुछ समयलों पाले। अब शीत वायु आदिके खेदसे घबराकर उस प्रतिज्ञा को छोड़ना चाहता है। सो विचार तो सही कि कोई दीन दरिद्री भी भूखसे पीड़ित हुआ अपनी बमनको आप खाता है? भावार्थ नहीं खाता है। तो तू त्यागे हुए परिग्रह को क्यों ग्रहण किया चाहता है?॥ १३॥

अन्येषांमरणं भवानगणयन्स्वस्यामरत्वंसदा देहिन्चिन्तय सींद्रियद्विपवशीभूत्वापरिभ्राम्यसि। अद्याश्व: पुनरागमिष्यतियमोन-ज्ञायतेतत्वतस्तस्मादात्महितं कुरुत्वमचिराद्धर्म्मंजिनेंद्रोदितम्।१४।

हे आत्मा! तू औरोंके मरणको मरण नहीं गिनता है। इसीसे अपनेको सदा अमर बिचारता है। इन इंद्रिय समूह रूप हाथीका दबाया हुवा भ्रमता फिरता है ठीक यह भी नहीं जानता है कि दुर्निवारकाल कब (कल या परसों आदि कब) अवश्य आवेगा। इसलिये अपना हित-

कारी सर्वज्ञ केवलीका कहा हुआ धर्म तू शीघ्र ही धारणकर ॥ भावार्थ जब काल अचानक आजावेगा तब कुछ भी करतव्य काम न आवेगा इससे पहिले से ही वीतराग धर्मको धारण कर ॥१४॥

सौख्यंवाञ्छसिकिंत्वयागतभवेदानंतपोवाकृतं नोचेत्वंकिमिहैवमेवलभसेलब्धंतदत्रागतं । धान्यंकिंलभतेविनापिवपनं लोके कुटुम्बीजनो देहेकीटकभक्षितेक्षुसदृशेमोहंवृथामाकृथा ॥ १५ ॥

हे जीव ! तू जो सुख की चाहना करता है सो अपने मन में विचार तो सही कि तूने पूर्व जन्ममें कुछ दान दिया था ? वा जप तप संयमरूप पुण्य कर्म किये थे ? यदि नहीं किया तो इसलोक में सुख (जो दान पुण्य जप तपादिक फल है) तुझको कैसे मिलेगा ? जैसा पूर्व जन्ममें किया है उसीके अनुसार तुझे इस जन्ममें प्राप्त भया है। संसार में यह बात तो प्रसिद्ध है कि संसार में किसान लोग कहीं विना बोये भी धान्य काटते हैं जो बोते हैं सो ही काटते हैं। इसलिये कीडोंके खाये ईख समान इस

मनुष्य देह में तू वृथा मोह मतकर भावार्थ इसे पाकर कुछ आत्महित करले यही सुगुरुकी परमोपकारी शिक्षा है॥ १५॥

आयुष्यंतवनिद्रयार्द्धमपरंचायुस्त्रिभेदादहो बालत्वेजरयाकिय दुर्व्यसनतोयातीतिदेहिन्वृथा। निश्चित्यात्मनिमोहपाशमधुना संछिन्नबोधासिना मुक्तिश्रीवनितावशीकरणसच्चारित्रमाराधय॥१६॥

हे आत्मा! बड़े शोक वा आश्चर्य का विषय है कि तेरी आयुष्यका आधा भाग तो निद्रावश सोतेमें जाता है और शेष आधा बाल तरुण वृद्ध अवस्थामें वृथा जाता है। बालकपनमें खेल तमाशा अज्ञान वश प्रिय लगता है तरुण अवस्थामें नाना प्रकार दुर्विसन सेवन वा व्यापारिक चिंता कलह आदिमें समय जाता है वृद्ध अवस्था पौरुषहीन और अनेक रोगोंका घर है इससे विचार तो कर कि यह श्रेष्ठ मनुष्य जन्म पाया तिसमें तूने परमार्थ आत्महित क्या किया? इससे अब ऐसा निश्चय करके ज्ञानरूप खड्गसे मोहरूप पांसको काट जिससे मोक्षरूप स्त्री को

पावे सो तिसको वश करनहारे श्रेष्ठ चारित्रको धारण कर यह चारित्र देव नर्क तिर्यंच गतिमें नहीं धार सकता और इसके धारे विना मोक्ष लक्ष्मीको नहीं पा सकता, ऐसा चित्तमें सम्यक श्रद्धाणकर ॥ १६ ॥

यत्काले लघुपात्रमण्डितकरो भूत्वा परेषां गृहे भिक्षार्थं भ्रमसे तदा-
हि भवतो मानापमानेन किम् । भिक्षो तामसवृत्तितः कदशनात् किं तप्य-
सेऽहर्निशम् श्रेयार्थं किल सह्यते मुनिवरैर्बाधा क्षुधाद्युद्भवाः ॥ १७ ॥

हे भिक्षुक हे मुनि ! जिस समय में तू हाथ में छोटा पात्र (कमंडल) लेकर भिक्षा भोजन के अर्थ औरोंके (गृहस्थोंके) घरोंमें जाता है। तिसकालमें तुझे मान अपमानसे क्या (गृहस्थ जो अपनी इच्छासे सरस नीरस भोजन देवे सो ग्रहण कर) दिनरात्रि तापस वृत्ति और अरोचक (प्रकृति विरुद्ध) भोजनों से क्यों दुखी होता है ? देख ! अपने कल्याणके अर्थी (चाहनेवाले) महामुनि क्षुधा पिपासादि (भूख प्यास आदि) से उपजी बाधाको समताभावसे (संक्लेश रहित परणामोंसे)सहते हैं अर्थात् परीषहको जीतते हैं। सो तुझे घबराना उचित नहीं है ॥१७॥

एकाकीविहरत्यनस्थितवलीवर्दोयथास्वेच्छया योषामध्य रत स्तथात्वमपिभो त्यक्त्वात्मयूथंयते । तस्मिंश्चेदमिलाषतानभवतः किम्भ्राम्यसिप्रत्यहं मध्येसाधु जनस्यतिष्ठसिनकिंकृत्वासदाचार ताम ॥ १८ ॥

हे यति हे मुनि ! जैसे चंचल (एक जगह न ठहरने वाला) विजार (अनेक स्त्रियोंके रमने वाला) सांड़ जो स्वजातीय स्त्रियों में (गायोंके समूह में) रतहुआ सो अपने यूथको (बैल समूह को) छोड़कर इच्छा पूर्वक (मनमाना) एकला फिरता है। तैसे ही तू भी विचरै है (फिरता है) जो स्त्रियोंमें तेरी अभिलाषा (प्रीतिकी चाह) नहीं है तो प्रतिदिन क्यों भ्रमता फिरता है ? सम्यक् प्रकारचारित को धारण कर साधु जनों के मध्यमें क्यों नहीं रहता ? यहां आचार्य शिष्य को ऐसे ताड़नारूप वचन कहते हैं। कारण कि विरक्त साधुओंको रागभाव की पुतली स्त्रियोंमें जाना विरागता खोने और कलंकित होने को विपर्यय हेतु है इस कारण विपर्ययको त्यागना चाहिये ॥ १८ ॥

क्रीतान्नंभवतः भवेतकदशनं रोषस्तदाश्लाध्यते भिक्षायांयद

धाप्यतेयतिजनैस्तद्भुज्यतेऽत्यादरात्। भिक्षोभाटकसद्म सन्निभत नोः पुष्टिंवृथामाकृथा· पूर्णे किंदिवसावधौक्षणमपिस्थातुंयमोदास्यति ॥ १८ ॥

हे भिक्षुक! (परायेघर भोजन करनेवाला) यदि भोजन तेरे मोलका लिया होता तो स्वादिष्ट न होने पर तू क्रोध भी गृहस्थ दातार पर करता तो फवता अर्थात् शोभा देता। और भिक्षा में तो जैसा भोजन सरस नीरस खार मीठा ठंडागर्म जो गृहस्थ ने अपने लिये बनवाया है और उसमेंसे पुण्यहेतु तुझेभी दिया तो तुझे प्रेमसे खाना चाहिये जिससे गृहस्थका चित्त न पीड़े। क्योंकि जोकुछ भिक्षामें मिलता है साधुजन उसको अत्यन्त आदर पूर्वक खाते हैं। इस भाड़े के घर समान शरीर को वृथा पुष्टमत कर कारण कि जब आयुके दिनों की अवधि पूरी हो जावेगी तब क्या काल तुझे ठहरने देवेगा? भावार्थ आयु पूर्ण होतेही इस शरीर से आत्मा अलग हो परलोक जावेगा। फिर इससे अधिक प्रेमकिस काम आवेगा। इसलिये शरीरसे अधिक राग मतकर, यही तेरे लिये परम शिक्षा है॥१८॥

लब्ध्वार्थंयदिधर्म्मदानविषयेदातुंनयैः शक्यते दारिद्रोपहता स्तथापिविषयासांक्तिंनमुञ्चन्तिये । धृत्वायेचरणं जिनेंद्रगदितंत स्मिन्सदानादरास्तेषांजन्मनिरर्थकंगतमजाकण्ठेस्तनाकारवत॥ २०

जो मनुष्य धनको पाकर दान पुण्य में नहीं लगाते हैं रात्रि दिन फिर भी कमाई कमाई २ में मरते पचते हैं ऐसे सूमोंका जन्म तथा जो निर्धन हैं जिनको रहनेको टूटी झोंपड़ी है पहिरने को फटे मैले वस्त्र किंचिन्मात्र माटीके बर्तनों में कुसमय शाक भांजीसे पेट भरते हैं तोभी विषय वासनाको नहीं छोड़ते न सच्चारित्र को ग्रहण करते हैं । और जो भगवत प्रणी चारित्र को ग्रहण कर उसमें सदा अनादरसे वर्तते हैं तथा चारित्रमें शिथिल रहते हैं तिन सबका मनुष्य जन्म बकरी के गलेके स्तन समान निकाम है व्यर्थ है ॥२०॥

लब्ध्वामानुषजाति मुत्तमकुलम्रूपंचनीरोगताम् बुद्धिंधीधन सेवनंसुचरणंश्रीमज्जिनेंद्रोदितम्। लोभार्थंवसुपूर्णहेतु भिरलं स्तोकायसौख्यायभो देहिन्देहसुपोतकंगुणभृतंभक्तुंकिमिच्छास्तिते ॥२१॥

हे आत्मा ! मनुष्य जन्ममें उत्तम जाति कुल को पाया है (यदि म्लेच्छ शूद्र होता तो क्या

उत्तम आचरण करसक्ता ?) और रूपवान सुन्दर निरोग शरीर पाया है रोगी होता तो क्या धर्म कर्म आचरण कर सकता ? फिर ज्ञान और अच्छे पंडितों का सत्संग मिला है और श्रीमज्जिनेंद्र का कहा हुआ चारित्र भी तूने पाया है यह सर्व दुर्लभ २ सामग्री पाकर अब तू लोभ के बश होकर धनकी चाहना को पूर्ण करने के हेतु किंचित्मात्र क्षण भंगुर सुखकी बाछांकर सर्व गुणरूप रत्नोकर भरा हुआ यह शरीर रूप जहाज संसार समुद्रसे पार करनेवाला तिसके तोड़ने को (विनाशको) तेरीबुद्धि क्योंकर भरपूर हो रही है ? बड़े खेदका विषय है कि श्री गुरुका उपदेश तेरे चित्त में प्रवेश नहीं करता है ॥२१॥

वेतालाकृतिमर्द्धदग्धमृतकंदृष्ट्वाभवन्तंयते यासांनास्तिभयंत्व यासममहोजल्पन्तिलास्तत्पुनः। राक्षस्योभुवनेभवन्ति वनितामामागताभक्षितुं मत्वैवंप्रपलाप्यतांमृतिभयात्वंतत्रमास्थाःक्षणं ॥२२॥

हेमुनि ! जिन तरुण स्त्रियोंको तेरा प्रेतके आकार अधजले मुर्दावत भयंकर कुरूप देखकर भी भय नहीं होता और तेरे साथ प्रेम पूर्वक बचनालाप करती हैं सो स्त्रियां संसार में महा

भयावनी राक्षसी हैं तिनको देखकर तू अपने मनमें ऐसा विचारकर कि ये मायाविनी मेरे खानेको (नाशकरने को) आई हैं ऐसा मनमें दृढ़ निश्चयकर मरनेके भयसे तिनके सन्मुखसे शीघ्र ही भाग वहाँ क्षणमात्र मत ठहर नहीं तो वे तेरा चारित्ररूप धन और ज्ञानरूप प्राण हर लेवेंगी ऐसा निश्चय जान ॥ २२ ॥

मागास्त्वंयुवतीगृहेषु सततंविस्वासतांसंसयो विस्वासेजन वाच्यतांभवतितेनश्येत्पुमर्थंह्यतः। स्वाध्यायानुरतोगुरूक्त वचनं शीर्षे समारोपयंस्तिष्ठत्वं विकृतिं पुनव्रजसिचेद्यासित्वमेवक्षयम् ॥२३॥

हे मुनि ! तू निरन्तर (प्रतिदिन) स्त्रियों के घरमें (निवासस्थान में) विश्वास मतकर अर्थात् निडर हो तहां न वैठ। नहीं तो ऐसा विश्वास करनेसे तेरी लोक में हास्य होगी सब लोग तेरी ओर से सन्देह करेंगे और आपस में कहेंगे कि ये महात्मा नारी भक्त हैं। तव तेरा सर्व पुरुषार्थ धर्ममोक्ष का साधन नाश हो जावेगा। इसहेतु से तू अब धर्मशास्त्रोंके स्वाध्याय में लीन हुआ सुगुरुकी उत्तम शिक्षाको अपने मस्तक पर रख अर्थात उससुगुरु शिक्षाको

सर्वोपरिमान तपोवनमें निवासकर और जो न मानेगा अर्थात् सुगुरु शिक्षा के विपरीत चलेगा (आचरण करेगा) तो इसमें तेरी महाहानि होगी अर्थात् संगसे निकाला जायगा तप से भ्रष्ट हो लोक निंद्य होगा ॥ २३ ॥

किंससकारशतेन विट् जगतिभोःकाश्मीरजंजायते किंदेहःशुचितांव्रजेदनुदिनंप्रक्षालनादम्भसा। संस्कारोनखदन्तचक्रवपुषां सा धोत्त्वयायुज्यतेनाकामीकिलमण्डनप्रियइतित्वंसार्थकंमाकृथाः।२४।

हे मुनि क्या सौ १०० संस्कारोंसे भी संसार में विष्टा (मल) केसर हो सकता है? अर्थात् मैले में सैकड़ों सुगंधित वस्तुये मिलाने से भी केसरके गुणों को (रंग गंध स्वादादि को) वह नहीं पहुंच सकता। तैसेही शरीरभी प्रतिदिन के स्नानसे क्या शुद्ध हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता है स्नानसे किंचित कालको ऊपरी देहका मल धुलहो गया तो भीतर से मलमूत्र पसीना आदि उसे शीघ्रही फिर मैलाकर देतेहैं। और अंतरंग में कुटिल भाव जनित जो पापरूप मल भरा है वहतो पानी में पैठे (घुसे) रहते भी नहीं धुल सकता है और नख दांत केश

श्रौर मुखका शृंगार तू करता है इससे तो तू मंडन प्रिय कामी प्रगटपने दृष्टि पड़ता है। वीतराग अकामी नहीं होसकता इससे जो ऐसा करनाहै तो सार्थक नाम यति मत रखवा अर्थात् कुलिंगी वेशी नाम रखाना योग्य है॥ २४॥

वृत्तैर्विंशतिभिश्चतुर्भिरधिकैःसल्लक्षणीनान्वितै [ग्रंथंसज्जनचित्तवल्लभलिमंश्रीमल्लिषेणोदितं। श्रुत्वात्मेंद्रियकुञ्जरान्समटतो रुन्धन्तुतेदुर्जयान् विद्वान्सो विषयाटवीपुसततंसंसारविच्छित्तये॥२५॥

विद्वानलोग चौवीस शार्दूलविक्रीड़ित छंदों में श्रीमत् मल्लिषेणनाम आचार्यके बनायेहुए इस परमोत्तम लक्षण युक्त ग्रंथको सुनकर अपनी चंचल और मस्त मनोहस्ती ज्यों स्वच्छंद होकर विषयरूप बनमें चारों ओर घूमता है भटकने वाली इंद्रियो को रोको कैसी हैं इंद्रिया महादुर्जय जो कठिनता से जीती जा सकती हैं तिनको संसार (भव भ्रमण) के नाश के लिये रोको अर्थात् अपने वशीभूत करके जप तपादि सम्यक् चारित्रमें लगावो इसीमें तुम्हारा परम कल्याण है और यही श्रीगुरुकी परम हितकारिणी श्रेष्ठ शिक्षा है॥ २५॥ ॥ समाप्त॥

नरसिंह दास अग्रवाल द्वारा "लक्ष्मी प्रिंटिंग वर्क्स" कलकत्तामें छपित।